JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

"मधु कांकरिया की कहानी : "भरी दोपहारिया के अंधेरे" का अनुशीलन

लेखक :
अनुष्का प्रदीप पाचंगे
सहायक अध्यापिका
डी.ए.वी.पब्लिक स्कूल, ठाणे
सहयोगी लेखक :
डॉ. गीता यादव
एसएमआरके-बीके-एके- महिला महाविद्यालय, नाशिक-५

'अल्लुरी श्रीराम राजू' - एक क्रांतिकारी जिन्होंने आदिवासियों में उनके अस्तित्त्व तथा अस्मिता के प्रति चेतना लाई I हर आदिवासी में छुपे एक क्रांतिकारी से पहचान करायी I यही नहीं आदिवासियों के अस्तित्त्व तथा हक़ की लड़ाई में उन्होंने अपने प्राण न्योछावर किए I आजादी की इसी लड़ाई में बहुत बड़ा योगदान देनेवाले श्रेष्ठ साहित्यिक एवं क्रांतिकारी रामधारी सिंह दिनकर आज़ादी के बाद भी भारत को आज़ादी से वंचित मानते थे I उसी का फल कहिए या परिणाम उनकी यथार्थवादी कविता- 'सिंहासन खाली करो, कि जनता आती है I

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों के आधार पर यह तो जरुर कह सकते हैं कि ऐसे एक नहीं अनेक क्षेत्र हैं जिन्हें हम स्वतंत्रता के बाद स्वतंत्र कह सकते हैं परंतु स्वच्छंद नहीं कह सकते I उदाहरण के लिए किन्नर और आदिवासी आदि I

जनजाति के विकास हेतु सरकार ने पंचवार्षिक योजना बनाई, अनेक नियम बनाए I यह नियम या तो काग़ज़ों पर रहें या इन्हें आधा-अधूरा ही प्रयोग में लाया गया I हाँ यह बात अलग है कि वर्तमान में जनजातिय समाज एक ओर सांस्कृतिक दृष्टि से कला, नृत्य, संगीत, भाषा, लोक-गीत, लोकसंस्कृति के द्वारा मौलिकता एवं संपन्नता धारण किया हुआ है I परंतु वहीं दूसरी ओर अज्ञान, अशिक्षा व अवैज्ञानिकता से पिछडा रहा है I इसी का यथार्थवादी चित्रण वर्तमान कहानी 'भरी दोपहरी के अँधेरे' में किया गया है I

लेखिका मधु कांकरिया एक वास्तववादी लेखिका हैं जिन्होंने अपने साहित्य द्वारा सच्चाई को उज़ागर किया है I उनके लेखन से यह प्रतीत होता है कि हर तरह की सुंदरता के पीछे छिपी कुरुपता ही जीवन की वास्तविकता है I

भारतीय समाज व्यवस्था में जनजातियों का अलग विशेष स्थान रहा है I जनजातियों की सामाजिक व्यवस्था उनके अपने कबीले एवं जातियों में निर्मित सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताओं के आधार पर परिचालित होती है I प्रत्येक जनजाति का अपना एक सामाजिक संगठन है I 'भरी दोपहरी के अँधेरे' कहानी में ऐसी ही एक जनजाति 'संथाल' का यथार्थवादी चित्रण किया गया है I

कहानी की शुरुआत में ही लेखिका ने लिखा है– 'एक कहानी जो अढ़ाई हजार वर्षों से लगातार लिखी जा रही है, उसी का पुनराख्यान है यह कहानी' यह पंक्ति हमें यह कहती है कि जनजातीय समाजों का जीवन भी आजादी के पूर्व और बाद की राजनीतिक गतिविधियाँ और उसके कई रुपों से प्रभावित हुआ है I जिसके फलस्वरुप आज भी उनका जीवन रोज के जीवन यापन के लिए एक संघर्ष बना है I

यह कहानी एक मधुबन गाँव की है I जो उँचाई पर है I इसका रुपांतरण शिखरजी के रुप में हुआ है I जैनियों का मक्का–मदीना–यह शिखर जी ! जहाँ एक किलोमीटर के भीतर ही बीस अति भव्य मंदिर हैं I नक्काशी और वास्तुकला के नायाब नमूने ! अध्यात्म के ताजमहल ! देवदास, कृष्णचूरी, राधाचूरी और यूकलिप्टस जैसे खूबसूरत पेडों से घिरे उत्तुंग शिखरों वाले मंदिरों की इन कतारों को देख आप इसे मंदिरों का देश भी कह सकते हैं I सर्दियों में दूर–दराज से आए पक्षियों की तरह देश के कोने–कोने से जैन संप्रदाय के लोग यहाँ आते है I

उपर्युक्त वर्णन द्वारा प्रकृति की असीम सुंदरता में मंदिरों की कतार हमें प्राकृतिक असंतुलन और आनेवाले आकस्मिक आपदाओं का परिचय दिलाती है I जनजाति के विकास हेतु सरकारी योजनाओं के अंतर्गत रोजगार दिलाना यह सरकार का उद्देश रहा है I परंतु इन योजनाओं ने सामाजिक और राजनैतिक स्तर पर प्रत्येक आदिवासी का व्यक्तिगत पतन किया है I

लेखिका इन्हीं शिखरों पर उच्च शिला पर बैठकर एकांतिक क्षण बिताना चाहती है I अत: वह भोर होते ही यात्रा हेतु धर्मशाला के प्रवेशद्वार पर आती है I यहाँ की स्थिति देखकर लेखिका मानो कल्पना से वास्तविकता के धरातल पर पटकी जाती है I एक ओर प्रकृति की गोद में कुछ क्षण मौन गुजरने की कल्पना कर रही लेखिका डोली वालों को देखकर निर्विकार हो जाती है I डोली वालों का वर्णन करते हुए लेखिका कहती है– ढीली, मैली पोटलियों से एक–दूसरे पर लदे–बिखरे से ढेर सारे डोली वाले I बासी मुँह, कीच–भरी आँखें और उनींदे, मैले चेहरे I सोने और बैठने के बीच की स्थिति में अपनी डोली पर ही लुढ़कते–गिरते मिचमिची आँखों से अपनी बारी का इंतज़ार करते हुए I

लेखिका डोली नहीं चाहती थी I वह अन्य यात्रियों और डोलीवालों के साथ पहाड़ की और निकल गई I इस बार यात्रियों की संख्या कम होने के कारण डोलीवाले नाराज़ थे I इन आदिवासियों के लिए हर यात्री देवता या कुबेर था I बड़ी मुश्किल से सिर्फ़ पच्चीस डोलीवालों को काम मिला I बाकी के डोलीवाले यात्रियों के साथ चलते– चलते आगे बढते हैंI तथा बीच–बीच में उन्हें यात्रा के लिए पूछते हैं I इसके पीछे उनका उद्देश्य केवल यह रहता कि यदि कोई यात्री थक जाए तो डोली ले सकते हैं I उनकी इस सोच में उनकी पल्लवित आशा दिखती है जो कुछ अंतर पार करने के पश्चात खिलने से पहले मुरझा जाती है I यहाँ हमें जनजाति जीवन की जीने के लिए दिनभर की जानेवाले जद्दोजहद नजर आती है I इन आदिवासियों के परिवार का हर सदस्य पैसे की खातिर दिनभर बड़ी दौड–धूप करता है I बहरहाल लेखिका पहाड़ी की किसी एक उच्च शिला पर बैठकर आँखें मूँद लेती है I लेखिका इसे माइंड से नो माइंड की स्थिति कहती है I– 'मैं युग–युग तक उसी प्रकार बैठी हवाओं में उड़ती, हवाओं से ताकत बटोरती रहती I ब्रह्मांड के ऑर्केस्ट्रा को सुनती रहती, आत्मा पर लगे महानगरीय कीचड़ को धोती रहती कि तभी जैसे किसी ने ढेला मारकर मेरी तंद्रा भंग कर दी I लेखिका ने इन पंक्तियों द्वारा पाठक को प्रकृति के और करीब लाने की कोशिश की I लेखिका की तंद्रा भंग हो जाती है I वह फिर एक बार प्रकृति में छुपे कटु सत्य का चित्र देखती है I ग्यारह से पंद्रह वर्ष के बीच की किशोरियाँ और एक अधेड–सी स्त्री पहाड़ पर बालू उठाने आती है I सुबह आठ बजे से शाम पाँच बजे तक बालू उठाने के पाँच रुपए मिलते हैं I यह लोग बीच में खाना खाते ही नहींI तीन किलोमीटर घर से पहाडी तक आवा–जाही के बाद नौ घंटे की रगड़ाई और बाद में सिर्फ पाँच रुपए ? लेखिका के मन और मस्तिष्क पर इस विचार ने गहरा घाव किया I लेखिका कहती है – 'अग्निदेवी के (अधेड़ स्त्री) के चेहरे पर पतझड छा जाता है I अपने चहुँ और बिखरी सुंदरता से बेखबर अपने ही भीतर के यातनागृह में डूबती–उतरती वह कहती है–' "क्या करेंगी ? और कोई काम भी तो नहीं मिलता I" एक ओर शिखर पर बननेवाला एक और मंदिर लेखिका को बेचैन करता है– "क्या यहाँ की भूमि धँस नहीं जाएगी इतने मंदिरों के भार से ?" उपर्युक्त घटना से स्पष्ट होता है कि जनजाति के विकास हेतु लाने जाने वाले भौगोलिक परिवर्तन तथा इन परिवर्तनों के कारण जनजातियों को मिलनेवाली उपजीविका दोनों को विकास की ओर ले जानेवाला राजनैतिक उद्देश्य असफल ही रहा है I समकालीन दौर तक आते–आते देश में हुए राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिवर्तनों

और मूल्य विघटन की प्रक्रिया के बीच में जनजातियों के सामाजिक सुधार और सामाजिक न्याय के सपने टूटते गये I जनजातियों के सपनों का टूटना और देश की विकासशील धारा से कट जाने का नया यथार्थ समकालिन दौर के बाद आज वर्तमान में भी दिखाई देता है I

अग्निदेवी लेखिका को आशा भरे स्वर में पूछती है – "डोली लगेगा बहनजी ! हमारा आदमी डोली उठाता है I बीस रोज से पहाड़ पर रहा है, पर कोई यात्री नहीं मिलता I" उपर्युक्त कथन पर लेखिका के कंठ से बड़ी मुश्किल से इनकार आता है I

लेखिका फिर ध्यानाविष्ट होने की चेष्टा करती है I प्रकृति के सौंदर्य में एक होने की इच्छुक लेखिका बेचैन हो उठी थी I वह कहती है– 'मैं फिर ध्यानाविष्ट होने की चेष्टा में आँखें मूँद लेती हूँ, लेकिन कोई तार जैसे टूट गया था I मेरी सारी लय–ताल–गति टूट जाती है I आँखें मूँदते ही श्रम को किसी पवित्र पाठ की तरह पढ़ती वे श्रम–सुंदरियाँ और गमगीन अग्निदेवी की बुझी–बुझी आँखें और भी शिद्दत से मेरे मानस में लोटने लगती हैंI लेखिका कहती है– 'मैं समझ जाती हूँ कि दैन्य और दरिद्रता के दलदल में साधना के कमल नहीं खिल सकते Iविक्षुब्ध मन को शांत करना लेखिका के लिए कठिन हो गया था I वह अपने अशांत मन को शांत भाव से देखती हुई, महसूसती हुई पहाड़ पर आगे बढ़ती है I प्रकृति के पूर्णत्व का अहसास और स्वप्नलोक की सृष्टी करती पहाडियाँ लेखिका के ऑखों के सामने शताब्दियाँ लाती है I बुध्द, महावीर, सुकरात से लेकर पंत, निराला और अज्ञेय' इन सभी ने शायद सन्नाटे में लिखा होगा I सृष्टी,जनजाति और साहित्य एक दूसरे से अटूट बंधन मे बँधे नजर आते है I सृष्टी और जनजाति, सृष्टी और साहित्य, जनजाति और साहित्य, सभी एक–दूसरे के पूरक हैं तथा एक दूसरे के कारक है I लेखिका पहाड़ से उतरने लगती है I उतरते समय वह रास्ता दो फाँकों में आता है I लेखिका किस रास्ते से उतरे? इस असमंजस में पड़ती है I ऐसे में कहीं से डोलीवाले उतरते हुए मिले I लेखिका के जान में जान आ जाती है I डोलीवालों से बात करने पर यह पता चलता है कि बिना यात्री लिए वे ऊपर चोटी पर इस आशा में चढ़त है कि कोई थककर डोली में बैठ जाए I डोलीवाला कहता है, "अरे बैनजी, जिनको चाहिए उनको तो डोली मंदिर से मिल जाती है I हम तो भूखे मरते उन्हीं के पीछे दौड जाते हैं, जिनके साथ डोलीवाले नहीं होते कि ऊपर जब सँकरे, चिकने और खतरनाक रास्तों पर कोई नहीं चल सके तो उस समय हमारी डोली पर बैठ जाएँ–––इसी आशा में I "लेखिका कहती है, "हे भगवान ! बूँद भर आशा में पूरे पहाड़ पर दौड़I" डोलीवाले के कथनानुसार धर्मशाला में चार हजार डोलीवाले जिनमें से मुश्किल से महीने में एक बार नंबर आता है I इनका रेट बँधा हुआ है I ५० से ७० किलो तक हर डोलीवाले को ३५० रुपए और उसके बाद ३७५ रुपए मिलते हैं I लेखिका सोचती है इतने कठिन, खतरनाक और दुर्गम पहाड पर ५० से ७० किलो का बोझ लादने का सिर्फ ३५० रुपया ? आदिवासियों की इस दारुण व्यथा ने लेखिका से मन और मस्तिष्क को झकझोर दिया था I संथाल जनजाति के सामाजिक और पारिवारिक जीवन को आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत टूटता पाया जाता है I इनके परिवार के हर सदस्य के जीवन में कोई स्थिरता नहीं है I डोली वालों से बात करते–करते लेखिका उनमें से एक के दाएँ हाथ पर सिक्के के तीन निशान देखती है I आदिवासियों में जिस तरह स्त्रियों के शरीर पर गोदने के निशान जरुरी हैं वैसे ही पुरुष आदिवासियों के दाहिने हाथ पर सिक्के के तीन निशान I यह निशानी उनके पुरुषार्थ की निशानी होती है I इस पर आदिवासी का कहना है, "अब यह रिवाज धीरे–धीरे शेष हो रहा है I अब हम अंधविश्वासों से दूर हट रहे हैं I हमने अपने बच्चों के हाथों पर सिक्के नहीं बनाएँ I उपर्युक्त कथन द्वारा आदिवासियों में वैचारिक क्षमता का स्तर बढ़ता हुआ नजर आता है I इन आदिवासियों से बातें करते–करते हलकी–हलकी बारिश होने लगी I एक–दो आदिवासी औरते वहाँ से गुजरी I बंदर, रंगीन तितलियाँ, तोते, नीलकंठ और बकरियाँ देखकर लेखिका को लगने लगा जैसे वह पुरानी दुनिया में लौट आई है I इस बूँदाबाँदी ने बुद्धन माँझी और तुरी को (डोलीवाले) भीतर से तरंगित कर दिया था I वे आँखे मूँदे धीरे–धीरे हाथों से ताल देते गाने लगे, 'हैरे हो–हैरे हो ! भूति भला कति खान छूटि ! हैरे हो, हैरे हो–––' लेखिका गाने का अर्थ जानना चाहती है बुध्दन की आँखे नम थीं I वह जैसे सोते से जागा," गीत क्या–––– हमी लोगन की कहानी है बैनजी!" एक दीर्घ नि:श्वास ले वह फिर कहने लगा, "जब तक आदिवासी के शरीर में जान है, उसके देह को दौड़ते रहना है I उसकी मज़दूरी नहीं छूटने वाली I" उपर्युक्त कथन द्वारा स्वयं की वास्तविकता से परिचित तथा वर्षों तक न आनेवाले बदलाव के कटू सत्य का स्वीकार दिखाई देता है I

शाम में यहीं डोलीवाले मंदिर के खुले प्रांगण में एक–दूसरे पर औंधे लेटे, भेड़ की तरह एक–दूसरे से सटे, सिमटे–सिकुडे बैठे रहते है I दिन में एक ही बार दोपहरी में पास के होटल में दस रुपए में एक प्लेट भात खाते हैं I चाय तो

कभी–कभार साल–डेढ़ साल में मेले–वेले में पी जाती है I इन कथनों द्वारा आदिवासियों को पेट की भूख के लिए दिन और रात एक करने पर भी भूखे रहना पडता है यह पीडा असहनीय है I ऐसी स्थिति में नए दिन में नई शुरुआत अर्थात फिर से वही आशा, बाद में निराशा और अंत में खाली पेट, खाली हाथ I प्रकृति की कोख में यह कैसी चेष्टा ? पहले यह आदिवासी मोहलाइन पेड की खाई से रस्सी बनाया करते थे परंतु बाद में बाजार में प्लास्टिक की सस्ती रस्सियाँ आई जिस वजह से उन्हें काम मिलना मुश्किल हुआ I अब उन्हें पहाड से गाँव और गाँव से पहाड करना पडता है I अगर देखा जाए तो भूमंडलीकरण के दबाव और निजीकरण की नीतियों ने आदिवासी समाज पर सिर्फ प्रतिकूल प्रभाव ही नहीं डाला है, बल्कि निजीकरण ने आदिवासी क्षेत्रों में बाजारवाद को बढाया है, उससे शिक्षा, दवाई आदि सभी चीजें महँगी हो गई I आदिवासियों को अपने ही इलाकों के निजी संस्थानों में नौकरी आदि उन्नति के अवसर प्राप्त नहीं हुए है I इसीलिए उनका रोजगार भी घटा है I भूमंडलीकरण के दौर में रोजगार की अनुपलब्धता और बढ़ती रोजगारी ने आदिवासियों के लिए जीविका का कोई विकल्प नहीं छोडा है I परिणामत: वे अपनी विकट परिस्थिति में संघर्ष करते हैं I लेखिका डोलीवाले को पूछती है– "क्या झारखंड बनने का आपको कुछ भी फायदा नहीं हुआ ?" वह कहता है, "नहीं, हम लोगों को कुछ फायदा नहीं हुआ I जो पढ़े–लिखे है उन्हीं को फायदा पहुँचेगा I हम लोगों ने सुना कि सरकार ने बहुत पैसा दिया है I हमारी पंचायत का नाम है खुशीदार पंचायत हमने पूछा तो जवाब मिला, पैसा बी.डी.ओ. के पास आया, माँगो जाकर उससे I" उपर्युक्त पंक्तियाँ हमें जनजाति के विकास के नाम पर राजनैतिक और सामाजिक खोखली व्यवस्था से परिचित कराता है I संवेदनशील स्वभाव के कारण लेखिका से रहा नहीं गया I वह पूछती है–" अभी आपके यहाँ क्या बन रहा होगा ? डोलीवाला कहता है "अभी मकई छोड के आये हैं, उसका घाट बन रहा होगाI" लेखिका कहती है "हर वक्त मकई ?" वह कहता है, "हम लोगों का स्वाद तो अब मर गया है I अब तो पेट के गड्ढे में बस कुछ डाल देते हैं....I" मकई के बाद बाजरा और बाजरा के बाद भात और कतई साग (पत्तियों की सब्जी) आदिवासियों की यह दिनचर्या अर्थात आजीवन अँधेरे से परिचित होकर जीना है I उजाले की उम्मीद ही नहीं है I अपने इर्द–गिर्द भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक, सभी परिस्थितीयों से जानकर भी अनजान बनकर यह गुजरते हैं I लगातार की जीवन यातनाएँ, कष्ट, असफलता आदि को वे सहन करते है I

आदिवासियों से बात करते–करते लेखिका को पता चला कि इन्हीं पहाडियों से उतरते समय कई डोली वालों के साथ दुर्घटनाएँ घटी I शिबू पहाड से डोली लेकर उतरते वक्त फिसलन पर पाँव पड गया I किसी प्रकार बच गया, पर तब से एक हाथ और एक पैर पर लकवा मार गया I बुध्दन का चाचा डोली लेकर पहाडी से उतर रहा था I तब बिजली गिरी, बेहोश हो गया .....कई इलाज किए मगर पैर ठीक नहीं हुआ I घर में बेकार बैठा है I लेखिका कहती है, " मंदिरों के पास तो करोडों का फंड है I महानगरों से झागमझाग बहकर आती है चाँदी I मंदिर कोई मुआवजा नहीं देता ? सारी दुर्घटनाएँ तो काम के वक्त ही होती है ना ?" बुध्दन ने उत्तर दिया, "हम लोग कोई यात्री तो है नहीं कि मंदिर का धन मिलेगा I इतना डोलीवाला मरा, लूला–लँगडा हो गया, गोड़ गवाँ दिया, कुछ नहीं हुआ, पर सालों पहले एक यात्री का ऊपर खून हो गया था, तब सारे नियम बदल गए.. पहाड पर ऊपर डाकबँगले के पास बारह पुलिस को ड्यूटी पर लगा दिया गयाI" बुध्दन के इस कथन से यह बात स्पष्ट होती है कि आदिवासी भले ही शिक्षित हो अथवा अशिक्षित व सामाजिक ज्ञान से भलिभाँति परिचित है I उसकी वैचारिक बुद्धि उसे जीवन के प्रति और कठोर और गंभीर बनाती है I परिस्थिति के आगे उन्हें घुटने टेकने पडते है I इन्हीं बातों पर चर्चा करते–करते लेखिका और डोलीवाले उतर रहे थे कि एक घटना घटी I कोई एक डोलीवाला भूख से चक्कर के कारण बेहोश हो गया I उसका माथा फट गया और खून बह रहा था I डोलीवालों ने लेखिका को शांत रहने कहा क्योंकि यदि मंदिर तक रिपोर्ट पहुँच गई तो अगली बार डोली भी नही मिलेगी I मैनेजर कहेगा, ताकत नहीं है डोली क्या खींचेगा ? लेखिकाने अपने स्वभाव विशेष के अनुसार जनजाति के तह तक जाने का सफल प्रयोग किया है I इसी समय रास्ते में उन्हें एक दिगंबर मुनि मिलते हैं, जो संसार सुखों से अलिप्त है I लेखिका उनसे मदद चाहती है I महाराज उन्हें कोई मदद न करते हुए आगे बढते हैं I लेखिका की आवाज तल्ख हो उठती है.... "कैसा साधुत्व.....कोई मर रहा है और आपको अपने.....!" लेखिका यहाँ सांसारिक जीवन और सन्यासी की बीच एक बहुत बडी दरार का अनुभव करती है I डोलीवाले लेखिका के वर्तन से बहुत डरते हैं I वे लेखिका को अनुरोध करते हैं कि वे चली जाएँ अथवा बेकार में बखेडा हो जाएगा I अपनी संघर्षमयी दिनचर्या में और बाधाओं का आगमन न हो यह डर उनके मन में बसा है अतः वे एक ओर इसके प्रति सचेत है I

अंत में लेखिका लौटते समय स्वप्नील पहाडियाँ, हवाएँ और कोई स्वप्न लेकर नहीं चलतीI अब उसके साथ थे बालू उठाते नन्हे हाथ, फैले हुए बेडौल, खुरदरे पाँव, और थरथराती एक आवाज, 'ई भिखारी नहीं है I'

अत: हिंदी के संवेदनशील रचनाकारों का उद्देश्य मात्र जनजातीय जीवन की समस्याओं को उजागर करना ही नहीं रहा है, बल्कि वे सामाजिक जीवन की विषम परिस्थितियाँ, जटिलताएँ और अन्तर्विरोधों के मद्देनजर जनजातिय समाजों के बारे में मानवीयता के धरातल पर सोचने हेतु सकारात्मक दृष्टि पैदा करते हैं I लेखिका मधु कांकरिया, संवेदनशील होने के साथ–साथ मनुष्यता से ओत–प्रोत है I जिस कारण अपने अनुभव और यथार्थ से समाज को परिचित कराना चाहती है I जो हममें मानवीय धरातल सकारात्मक दृष्टिकोण लाती है I

---

१) मधु कांकरिया की यादगार कहानियाँ:प्रकाशन:इंडिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड लेखक–मधु कांकरिया:संस्करण–2021 (पृष्ठ क्र. 11)
२) वही (पृष्ठ क्र. 12)
३) वही (पृष्ठ क्र. 14)
४) वही (पृष्ठ क्र. 17)
५) वही (पृष्ठ क्र. 19)
६) वही (पृष्ठ क्र. 24)
७) वही (पृष्ठ क्र. 27)
८) वही (पृष्ठ क्र. 27)
९) वही (पृष्ठ क्र. 28)
१०) वही (पृष्ठ क्र. 30)
११) वही (पृष्ठ क्र. 31)
१२) वही (पृष्ठ क्र. 32)
१३) वही (पृष्ठ क्र. 34)
१४) वही (पृष्ठ क्र. 171)
१५) वही (पृष्ठ क्र. 182)
१६) (पृष्ठ क्र. 222)
१७) वही (पृष्ठ क्र. 223)
१८) वही (पृष्ठ क्र. 296)